कुछ कविताएं / मुनेश त्यागी

ख्वाब से बेदार होता है कभी मेहकूम अगर,
फिर सुला देती है उसको हुकमरां की साहिरी.

एक रिश्ता बनाने में जमाने लगे,
तोडने में फकत कुछ बहाने लगे.

जो मुश्किल रास्ते हैं उनको यूं हमवार करना है,
हमें जज्बों की कश्ती से समंदर पार करना है.

मक्र की चालों से बाजी ले गया सरमायेदार
इंतिहा ए सादगी से खा गये मजदूर मात.

मकतल में आते हैं वो खंजर बदल बदल के
या रब मैं कहां से लाऊं सर बदल बदल के.

अभी क्या है एक एक बूंद को तरसेगा मयखाना
जो अहले जर्फ के हाथों में पैमाने नही आये.

वही सब गजनवी अंदाज होगा,
वतन को लूटने का काज होगा,
शहीदों ने कभी सोचा नही था,
उन्हीं के कातिलों का राज होगा.

वतन को कुछ नही खतरा निजामे जर है खतरे में
हकीकत में जो रहजन है वही रहबर है खतरे में.

मालो दौलत ही नही लूट लिये सपने भी
ऐसे तो रहजन भी न थे जैसे ये रहबर निकले.

कांग्रेस का ही राज कायम रहेगा!

राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

श्री विश्वंभरनाथजी अब तो राजनीति से संन्यास ले चुके हैं , हां ,किसी जमाने में नगरपालिका से लेकर लोकसभा तक के चुनाव लड़ने का अनुभव उनके पास है । राजनीति के पेच को गहराई से जानते हैं । कल पार्क में मिल गये ।

मैंने कहा कि >> श्री विश्वंभरनाथजी , अब तो देश कांग्रेस से मुक्त होने की दिशा में बड़ी तेजी से आगे बढ़ रहा है ?

विश्वंभरनाथजी बोले >> आप भी कैसी बातें करते हैं ,यार !जब तक शासन की कांग्रेसी नीतियां कायम हैं ,तब तक कांग्रेस कहां जा सकती है ? भारत के राजनैतिक -आकाश में कांग्रेस व्याप्त है ,यहां की राजनैतिक-हवा में कांग्रेस व्याप्त है , कांग्रेस यहां के कण-कण में व्याप्त है ।

नाम उसका कुछ भी हो लेकिन उस सत्ता की चेतना तो कांग्रेस ही होगी । आप जानते ही हैं कि आत्मा अमर है ।

मैंने कहा कि >> आप तो पहेली सी बुझा रहे हैं विश्वंभरनाथजी !

वे बोले >> कांग्रेस का माने क्या है ?

>>यही कि कुछ कहना और कुछ करना ।

जो कहना सो करना नहीं ,जो करना सो कहना नहीं !

आश्वासन निरन्तर देते रहना , निभाने का मतलब नहीं ।<

वे बोले >> भाई मेरे , हर कुर्सी कांग्रेस ही तो है ।

कुर्सी पर जो भी आवेगा , वह कांग्रेसी ही होगा ।

बोलते-बोलते विश्वंभरनाथजी को ऐसा जोश आया कि वे तो भाषण ही देने लगे >>>

जबतक दलबदल कानून पास कराने के साथ ही दलबदल होती रहेगी ,तब तक कांग्रेस जीवित रहेगी ।

जब तक वृक्षारोपण की नीति के तहत जंगल साफ होते रहेंगे ,तब तक कांग्रेस का राज रहेगा,

जब तक मद्यनिषेध की नीति के रास्ते पर चलते हुए शराब के ठेक ? खुलते रहेंगे ,तब तक कांग्रेस अमर रहेगी ।

जब तक गरीबों के जीवन-स्तर उठाने की नीति बतला कर अमीर-घरानों का पोषण किया जाता रहेगा ,तब तक कांगेस अमर है ।

जब तक जनता को राहत देने की बात कह कर टैक्सों का भार बढ़ाया जाता रहेगा ,तब तक कांग्रेस को कोई नहीं मिटा सकता ।

समाज में समानता की प्रतिष्ठा के नाम पर जब तक> आरक्षण <वोट-बैंक का काम करता रहेगा ,तब तक कांग्रेस कहीं नहीं जा सकती!

जब तक अहिंसा के रास्ते पर बढ़ते हुए पुलिस लाठी-गोली चलाती रहेगी ,तब तक कांग्रेस कहां जा सकती है ?

जब तक सत्यमेवजयते की रट लगाने के बावजूद सच से परहेज रहेगा ,तब तक कांग्रेस जिन्दाबाद है ।

जब तक हिन्दी का गुणगान करते हुए देश में अंग्रेजी गिटपिट करती रहेगी ,तब तक कांग्रेस कहां जा सकती है ?

जब तक आत्मनिर्भरता की नीति के अन्तर्गत हम विदेशीनिवेश और विदेशी-सहायता के मोहताज रहेंगे ,तब तक कांग्रेस का ही राज है ।

जब तक कमीशन और कमेटियां कायम होती रहेंगी , लेकिन उनकी रिपोर्ट नहीं पढी जा सकेंगी , तब तक कांग्रेस का ही राज कायम रहेगा ।

जब तक जातिभेद से ऊपर उठने के नाम पर जाति के आधार पर ही मनोनयन होता रहेगा , जाति के आधार पर ही नियुक्तियां होती रहेंगी , तब तक कांग्रेस कायम रहेगी ।

जब तक हारे हुए प्रत्याशी गवर्नर बनते रहेंगे या राज्यसभा में जाते रहेंगे ,तब तक कांग्रेस कायम है । जब तक ईंट-ईंट पर अपना नाम लिखवाने की मंशा जीवित है ,तब तक कांग्रेस भी तो जीवित है । जब तक लोकतन्त्र की शपथ खा कर लोकतान्त्रिक-संस्थाओं से छेड़छाड होती रहेगी ,तब तक कांग्रेस कहीं चली गयी , ऐसा समझना भी भ्रम ही होगा ।

विश्वंभरनाथजी तो बोले ही जा रहे थे >> जब तक संसद और विधानसभाओं में अपराधी .....

मैंने कहा कि >> विश्वंभरनाथजी , मुझे तो जल्दी घर पंहुचना है , अच्छा , नमस्कार !

व्यंग्य/रवींद्रनाथ त्यागी

हिंदी दिवस

देश में जिस प्रकार गणतंत्र दिवस, स्वाधीनता दिवस, बाल दिवस, शिक्षक दिवस और शहीद दिवस मनाए जाते हैं, उसी प्रकार हिंदी दिवस भी मनाया जाता है। हिंदी दिवस चौदह सितम्बर को ही क्यों मनाया जाता है- इस बात का पता मुझे नहीं है। शहीद दिवस की भांति शायद हिंदी दिवस भी उसी दिन मनाया जाता है। जिस दिन उसकी मृत्यु हुई थी। जिस प्रकार किसी बड़े व्यक्ति के निधन पर एक सप्ताह तक शोक मनाया जाता है, उसी प्रकार कुच्छ संस्थान ऐसे भी हैं जो हिंदी दिवस के स्थान पर हिन्दी-सप्ताह का आयोजन करते हैं।

इस बार मेरे दफ़्तर के लोगों ने निश्चय किया कि हिंदी दिवस मनाया जाय और शानदार ढंग से मनाया जाए। न भूतो न भविष्यति वाली बात। दफ़्तर के नेताओं ने विस्तृत कार्यक्रम बनाया और तय किया कि सबसे पहले बीती विभावरी जागरी का नासरा लगाते हुए सारे नगर में प्रभातफेरी लगाई जाए, उसके बाद हाल ही में खरीदा गई हिंदी पुस्तकों की प्रिदर्शनी लगाई जाए और उसके बाद राष्ट्रीय एकता व हिंदी का भविष्य शीर्षक को लेकर एक भाषण प्रतियोगिता रखी जाए और उसमें सर्वश्रेष्ठ वक्ता को दफ़्तर की सबसे सुन्दर लड़की माला पहनाए। दोपहर के बाद सरकारी काम-काज में हिंदी का प्रयोग विषय पर एक परिचर्चा हो, उसके बाद एक कवि सम्मेलन हो और अंत में चलकर अंधा युग को नृत्य नाटिका के रूप में रंग-मंच पर प्रदर्शित किया जाए। जब इस विषय में मुण्से पुछताछ की गई तो मैंने सारी बातों की स्वीकृति दे दी। इसके बाद सारे कार्यक्रम के लिये चंदा किया गया और नाटक का रिहर्सल भी शुरू कर दिय गया।

शेक्सपीयर ने लिखा है कि समय और समुद्र का ज्वार किसी की प्रतिक्षा नहीं करते। आखिर वह दिन आ ही गया, जिसकी सबको प्रतीक्षा थी।

मैं इसे दुर्भाग्य ही कहूंगा कि हिंदी दिवस का श्री गणेश ही कुछ ऐसा हुआ कि काफ़ी हिंदी प्रेमियों का दिल ही नहीं, बल्कि शरीर भी टूट गया। प्रभातफेरी लगाते समय कुछ कुत्तों ने जुलूस का पीछा किया और कुछ को काट भी लिया। कुत्तों से बचने के लिये दफ़्तर के कर्मचारी इधर-उधर भागने लगे तो थाना लालकुर्ती के सिपाहियों ने उन्हें चोर समझकर पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। प्रभातफेरी के कारण जिन युवतियों की नींद उचट गई थी वे भी प्रभातफेरीवालों को गालियां देने लगीं। दाग़ देहलवी ने जो कहा था वह पूरी तरह सच निकला: दी मुअज्ज़न ने अजां शब की वस्ल पिछले पहर, हाय कमबख्य को किस वक्त खुदा याद आया।

दिन में दस बजे पुस्तकों की प्रदर्शनी की गई। राज्य के एक मंत्री (जो कभी हमारे ही दफ़्तर में बाबू होते थे) उद्घाटन करने आए। किताबें काफ़ी थीं ओर ज्यादातर उन उन लोगों की थीं जिनके कारण लोगों ने हिंदी पढनी सीखी थी। बाबू देवकी नंदन खत्री, गोपालराम गहमरी, कर्नल रंजीत, शषधर दत्त, कृष्णकान्त कुशवाहा, प्यारेलाल आवारा, ओमप्रकाश शर्मा और गुलशन नंदा का पूरा का पूरा जनप्रिय साहित्य हमारे सामने था। कुछ किताबें ऐसी थीं कि महिला कर्मचारियों के लिए विशेष रूप से खरीदी गई थींओर उनमें 'विवाहित आनंद', 'पत्नी पथ प्रदर्शक' और 'सचित्र कामकला' (दोनों भाग) विशेष आर्कषण रखती थीं। हम लोगों ने उस प्रदर्शनी ने कोई एक घंटा लगाया ओर फ़िर हम लोग शेष कार्यक्रमों के लिये बाहर निकल आये।

दफ़्तर के लॉन में एक विशाल पंडाल लगा था जिसके चारों ओर 'स्वागतम' का बोर्ड लगा था। भाषण के लिये एक माइक्रोफ़ोन था जो या तो बोलता ही नहीं था और बगर बोलता था तो इतने जोर से बोलता था कि कानों के पर्दे फटने लगते थे। वक्ता काफ़ी थे और कुछ तो वाकई इतने प्रसन्न थे कि हिंदी के लिये प्राण तक न्यौछावर कर सकते थे, जिसकी कि इत्तफ़ाक से कोई खास जरूरत महसूस नहीं हुई। एक वक्ता थे, जिन्होंने ऐसी हिंदी बोली जिसमें आधे से ज्यादा फ़ारसी थी और ठीक उनके बरखिलाफ़ एक वक्ता ऐसे भी थे जिन्होंने सरल हिंदी के पक्ष में ऐसा भाषण दिया जिसमें 'ठेठ हिंदी का ठाठ' था। ज्यादातर लोगों ने यही कहा कि राष्ट्र चाहे रसातल को चला जाए वा हिंदी का भविष्य उज्जवल रहे। एक सज्जन ने तो यहां तक कहा कि हिंदी के लिये प्राण तो क्या, वे अपनी पत्नी तक को छोड़ सकते हैं। मंत्रीजी जल्दी में थे, वे चले गये। उन्हें किसी शराब की दुकान का उद्घाटन करना था। भाषणों के बाद बूंदी के लड्डू बटे जिन्हें देखकर सबको गणेशजी की याद आनक लगी। मोदकप्रिय मुद मंगलदाता, विद्या वारिधि बुद्धि विधाता। सबसे श्रेस्ठ वक्ता कौन था, यह निश्चित नहीं किया जा सका, हालांकि इस मुद्दे को लेकर कर्मचारियों के बीच हाथापाई तक हो गई। दफ़्तर की सबसे ज़्यादा सुंदर लड़की कौन थी, यह भी तय नहीं किया जा सक। भाषण के बाद लंच हो गया। मैं बराबर उस वक्ता के बारे में सोचता रहा जिसने कहा था कि महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी की इतनी सेवा की थी कि 'द्विवेदी' के स्थान पर उन्हें 'चतुर्वेदी' कहना कहीं ज्यादा उचित होगा। उनका कहना था कि व्यक्ति का नाम उसके जन्म के आधार पर नहीं, वरन उसके कर्म के आधार पर निश्चित करना चाहिये। मैं उनके तर्क से काफ़ी प्रभावित हुआ।

लंच के बाद परिचर्चा शुरू हुई। परिचर्चा क्या थी, गृहयुद्ध की शुरूआत थी। एक सज्जन थे जिनकी शक्ल-सूरत हनुमान जी से मिलती थी और वैसे भी उनकी मूंछों का साइज हनुमान जी की पूंछ से कम नहीं था। उन्होंने अश्वघोष जैसी वाणी में कहा कि हिंदी को यदि वाकई राजभाषा बनाना है तो 'ताजिराते हिंद' में एक दफ़ा और जोड़नी पड़ेगी। सरकार यदि प्यार और दुलार से ही काम लेती रहेगी तो सिवाय नामपट्टों, रबर की मुहरों और लिफ़ाफों पर लिखे पतों के अलावा हिंदी को कोई स्थान नहीं मिलेगा। हिंदी के नाम पर विभाग खुलते रहेंगे, अफ़सर लोग विदेश जाते रहेंगे और जनता के प्रतिनिधि मौसम के अनुसार देश के सुंदर स्थानों का दौरा करते रहेंगे। बस, इसके आगे कुछ नहीं होगा। कुछ और लोग थे जो सरकार की उदार नीति के पक्ष में थे, मगर हनुमान जी के उस जेबी संस्करण ने किसी और को बोलने ही नहीं दिया। सूत्रधार से शुरू करके भरत वाक्य तक उन्होंने ही बोला। जब किसी ने कुछ आपत्ति की तो वे मूंछें ऐंठकर बोले कि आप जरा बाहर आइये, मैं सिखाता हूं कि हिंदी कैसे आती है।

कोई चार बजे शाम को कवि सम्मेलन शुरू हुआ। कुछ कवि उर्दू के भी थे। कवि-सम्मेलन का संचालन कौन करे-इस मुद्दे को लेकर काफ़ी झगड़ा-फ़साद हुआ। अंत में चलकर एक ऐसे होनहार व्यक्ति को यह जिम्मेदारी सौंपी गई कि हर कवि के बाद एक अश्लील चुटकुला सुना सकता था। सबसे पहले एक ऐसे कविजी प्रकट हुए जो वीरगाथाकाल का चरित्र रखते थे। उन्होंने जो जोश भरी कविता सुनाई उसे सुनकर निराला की 'जागो फ़िर एक बार' की याद आती थी। संक्षेप में उन्होंने यह कहा कि देश एक रहे या न रहे, हिंदी को राजभाषा स्वीकार करना ही होगा और उसका प्रयोग अनिवार्य किया ही जायेगा। जो लोग ऐसा नहीं करेंगे, वे देशद्रोही होंगे। उवकी उस ओजपूर्ण कविता में कविता कम थी, ओज ज्यादा था। उन्होंने मुट्ठियां तानीं, हाथ-पैर हिलाए और यह साबित कर दिया कि कविता मात्र श्रव्य-काव्य ही नहीं है वरन दुष्य काव्य है। उनके बाद संचालक ने एक अश्लील लतीफ़ा सुनाया, जिससे तनाव जो था वह कम हो गया। उसके बाद एक कवियत्री जी आईं जिन्होंने अपने कोकिल स्वर में एक प्रणय-गीत पढा। कविता से लगता था कि उस कवयित्री के पति सात समंदर पार किसी दूर देश को चले गये थे और कवयित्री जो थीं वे संतान का सुख देखना चाहती थी जो कि पति के अभाव में उन्हें शायद नहीं मिल सकता था। कविता शुरू में छायावादी रही, फ़िर रहस्यवादी हुई और बाद में चलकर प्रगतिवाद को भी पार करके यथार्थवादी हो गई। अंत में चलकर कवयित्री जी ने स्पष्ट शब्दों में अपने जीवनसाथी को संबोधित करके कहा था कि यदि वे नियत अवधि के भीतर वापस नहीं लौटे, तो वह दूसरी शादी कर लेगी क्योंकि वह बिना पति के तो रह सकती थी मगर बिना संतान के नहीं। कवयित्री जी जर्मी, क्योंकि देखने में वह सुंदर थीं और गला उनका मधुर था।

कुछ कवि हुट कर दिए गए। एक कवि जी इतने स्वस्थ्य थे कि मंच पर बैठने की प्रक्रिया में उनकी पैंट पीछे से फट गई। उर्दू के एक कवि 'हैरत' थे जिन्हें संचालक महोदय ने 'गेरत' नाम से पुकारा। उन्होंने इस अपमान के सामने काव्य-पाठ को मना कर दिया। कुछ काफ़ी फूहड़ उपनामवाले हास्य रस के कवि थे, वे खूब जमे। कुछ कवियों ने दफ़्तर के बड़े साहब (यानी कि मुझे) को लेकर काफ़ी भला-बुड़ा कहा मगर श्रोताओं ने उसे बार-बार पढने को कहा। मुझे अपनी लोकप्रियता का पहली बार एहसास हुआ। कवि-सम्मेलन करीब दो घंटे चला

शाम सात बजे हम लोग भारती जी की अमर कृति 'अंधायुग' का मंचन देखने इकट्ठे हुए। इत्तफ़ाक कुछ ऐसा हुआ कि प्रोग्राम शुरू होते ही बिजली किसी के साथ भाग गई। 'अंधायुग' इतना प्रत्यक्ष प्रभाव भी डाल सकता है, इसका पता मुझे उसी दिन हुआ।

हम लोग बत्ती की प्रतिक्षा में लगभग एक घंटा बैठे रहे, मगर बिजली थी कि नहीं आई। हम अंधायुग देखकर तो नहीं, मगर भोगकर जरूर आये। उस घोर अंधकार में कुछ लोगों को विद्यापति की याद आ गई और उन्होंने एक लड़की को छेड़ दिया। बाबू लोगों के दो दल अलग-अलग बन गये ओ एक दल ने दूसो दल से कहा कि हिंदी दिवस की उपलक्ष्य में एकत्र की गई राशि में से उसने लगभग एक हजार रुपयों का गबन किया है। झगड़े-फ़साद के उस दौर में किसी ने एक बांस खींच लिया जिसके कारण पंडाल जो था, वह नीचे गिर गया।कसफी खुदाई के बाद हम लोग प्रकाश में आये।

जैसा कि आपने भी एहसास किया होगा, हमारा हिंदी दिवस काफ़ी सरल रहा।